प र जैनाचार्य पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म का सम्मति

प शान्तिलालजी सेठ ने 'जागरण' अवलोकनार्थ दिया । हमारा समाज के विद्वान् मुनि मधुरजी ने श्री आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्ययनों में से कतिपय सूक्तियों का संकलन करके हिन्दी अनुवादसहित इसे सम्पादित किया है । वर्तमान परिस्थितियों में यह प्रयत्न सराहनीय है। जिन भगवान् की वाणी का अधिक से अधिक प्रचार हो और उसके द्वारा जगत् म सभी शान्ति फैले यह वाञ्छनीय है । आशा है मुनिश्री अपनी इस प्रकार की साहित्य-सेवा को भविष्य म भी चालू रखेंगे ।'

पंडितवर्य श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल की सम्मति

आज मानव की विचारशीलता को विज्ञान के विकराल दानव ने दबोच लिया है । मनुष्य की सहृदयता स्वार्थपरता के गहरे गह्वर म जा गिरी है । व्यक्तिगत और वर्गगत स्वार्थपूर्ति की तृष्णा रूपी लपटों में सर्व भूतहित की भावना भस्मसात् हो रहा है और परमाणुबम जैसे विनाशक साधनों की छन छाया म व्यापक मृत्यु विश्व के अस्तित्व को चुनौती दे रही है । समग्र संसार जैसे मोह निद्रा में पड़ा है । ऐसे समय म 'जागरण' का संदेश अत्यन्त उपयोगी है । विद्वान् मुनिश्री मधुरजी का यह प्रयास अभिनन्दनीय है । आशा है भविष्य म वे अपनी कृतियों से साहित्य समृद्धि म महत्त्वपूर्ण अभिवृद्धि करेंगे ।

जा ग र ण

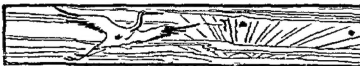
[श्री आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्ययन के सूक्त-वाक्यों का संकलन]



— सम्पादक —

जैनाचार्य पूज्य श्री जयमलजी महाराज
के सम्प्रदाय के स्वर्गीय श्रद्धेय
स्वामीजी श्री जोरावरमलजी
महाराज के सुशिष्य
पं० रत्न मुनिश्री मिश्रीमलजी
महाराज (मधुकर)
न्याय–साहित्यतीर्थ





प्रथमावृत्ति १० ०	मूल्य ।।।) आने	वी० स० ४७७ सम्वत् १० ६

मुद्रक
श्री चालसिंह के प्रबन्ध से
श्री गुरुकुल प्रि० प्रेस ब्यावर में मुद्रित

समर्पण



जिनकी कृपा से आत्मकल्याण के
पथ पर अग्रसर हुआ
उन्हीं श्रद्धेय पूज्य गुरुवर
श्री जोरावरमलजी महाराज के
कर-कमलों मे
श्रद्धा का यह प्रथम प्रसून
समर्पित है।

विनीत—
मधुकर

सम्पादकीय निवेदन

संवत् १९९६ में मेरा चातुर्मास मेड़ता में था। उन दिनों मद्रास से प्रो० इन्द्रचन्द्रजी का एक पत्र मिला। उस में साहित्यिक प्रवृत्ति के लिए प्रेरणा थी और साथ में कुछ सुझाव भी।

प्रोफेसर साहब से मेरा पुराना परिचय था। विद्यार्थी-जीवन के कई ग्रीष्मावकाश उन्होंने मुझे पढ़ाने में व्यतीत किए थे। उनकी विद्वत्ता तथा सूझ से मैं तभी से प्रभावित था। मद्रास वाले पत्र की बातें पते की थीं। वे मेरे हृदय में जम कर बैठ गईं। तभी से इस ओर प्रवृत्ति करने के लिए बराबर सोचता रहा।

मेरे वर्तमान गुरु महाराज स्वामीजी श्री हजारीमलजी महाराज मुझे इस कार्य के लिए सदा प्रेरित करते रहे हैं। मैंने दश वर्ष की अवस्था में संयम ग्रहण किया। पांच वर्ष बाद मेरे श्रद्धेय गुरुवर स्वामीजी श्री जोरावरमलजी महाराज का स्वर्गवास हो गया। उसके बाद वर्तमान गुरु महाराज ने ही मेरा पुत्र के समान पालन किया। अपने कष्टों की परवा न करके उन्होंने मेरे अध्ययन के सभी साधन तथा सुविधाएँ प्रस्तुत कीं। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि मेरे विकास की चिन्ता जितनी उन्हें रही है और अब है उतनी मुझे भी नहीं है। उनकी वात्सल्यपूर्ण छत्र छाया मेरे लिए

सब से बड़ा सहारा है। प्रो० इन्द्रजी के पत्र ने जो बीज बोया था गुरु महाराज की प्रेरणा से वह दिन प्रति दिन अंकुरित होने लगा।

फिर भी अनुभव न होने के कारण मुझे कार्य प्रारम्भ करते हुए संकोच हो रहा था। प्रारंभिक सहायता के लिए इन्द्रजी से फिर पत्र-व्यवहार किया गया, इस अर्से में वे मद्रास से बीकानेर और वहाँ से भिवानी कालेज में चले गए थे।

संवत् २००३ में हमारा चातुर्मास डेह (मारवाड़) में हुआ। वहाँ दशहरे की छुट्टियों में वे मुझे डेह में मिले। उस समय विचार-विनिमय के बाद कार्य को प्रारम्भ कर देने का निश्चय हुआ। प्रोफेसर साहबने इस कार्य के लिए ग्रीष्मावकाश मेरे पास बिताना मंजूर कर लिया। वे सन् १९४७ की १६ जुलाई को कुचेरा आए और पंद्रह दिन में ही यह संग्रह तैयार हो गया।

इस संग्रह का नाम 'जागरण' है। इस में आचारांग सूत्र के सूक्त वाक्यों का अपने ढंग से संकलन किया गया है।

आचारांग सूत्र दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त है। पहले श्रुतस्कन्धों में नौ अध्ययन हैं। यहाँ उसके प्रथम, द्वितीय व तृतीय अध्ययन में आए हुए सूत्रवाक्य संकलित किए गए हैं।

पुस्तक समाज के लिए कहाँ तक उपयोगी बनी है, इस का निर्णय तो पाठक स्वयं करेंगे। मैं सिर्फ अपना उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

भगवान् महावीर की वाणी व्यक्ति तथा समाज के उत्थान के लिए महत्व-पूर्ण स्थान रखती है। उसे जनता के सामने रखने के लिए कई प्रकार के प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं। आगमोदय-समिति तथा बहुत-सी दूसरी संस्थाओं से शास्त्रों का प्रकाशन हुआ है परन्तु फिर भी हमारे शास्त्र साधारण जनता की चीज नहीं बने। गृहस्थ लोग बृहत्काय शास्त्रों को या तो खरीदते ही नहीं, यदि खरीद भी लेते हैं तो प्राय उन्हें किसी साधु या साध्वी के उपयोग के लिए अलमारी में रख छोड़ते हैं। वे उन्हें स्वय पढने का साहस नहीं करते। साधु-साध्वी भी संस्कृत-प्राकृत जानने वाले बहुत थोड़े हैं। वे प्राय उस ओर प्रवृत्त नहीं होते।

इस लिए हमारा विचार हुआ कि यदि शास्त्रों के सुन्दर उपदेशों का शुद्ध हिन्दी अनुवाद के साथ छोटी छोटी पुस्तकों के रूप मे प्रकाशित किया जाय तो वह सभी के लिए काम की चीज बन जायगी। जैन, अजैन, साधु तथा श्रावक सभी इस से लाभ उठा सकेंगे। इसी भावना को सामने रखकर हमने इस प्रकार के साहित्य को प्रकाश में लाने का विचार किया है।

हमारी इच्छा है कि यह प्रकाशन सर्व-साधारण की अधिक से अधिक सेवा करे। इस के लिए जो सज्जन हमें किसी प्रकार का परामर्श देंगे हम उनके आभारी होंगे। भविष्य में उस परामर्श पर पूरा ध्यान रखा जायगा। हमारा पाठकों से निवेदन है कि व इस विषय में अपनी सम्मति अवश्य लिखें।

समाज को कैसे साहित्य की आवश्यकता है, यह एक टेढ़ा प्रश्न है। इस का उत्तर यही है कि समाज के सर्वतोमुखी विकास के लिए सभी प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है। किन्तु वह साहित्य स्वयं स्वस्थ होना चाहिए। रोगी साहित्य स्वस्थ समाज का निर्माण नहीं कर सकता। हमारे समाज में साहित्य सम्बन्धी जो प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उनमें इस बात की ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है।

हमारा प्राचीन साहित्य अत्यन्त समृद्ध है परन्तु नवीन साहित्य अभी नहीं के समान है। जो कविता या कहानियों की पुस्तकें अभी तक हमारे समाज में प्रचलित हैं उनमें से बहुत कम उत्तम साहित्य की श्रेणी में आ सकती हैं।

मैं संस्थाओं तथा विद्वानों का ध्यान इस ओर खींचना चाहता हूँ कि वे समाज में अपनी अपनी रुचि तथा सुविधा के अनुसार सभी प्रकार का स्वस्थ साहित्य तैयार करने का प्रयत्न करें।

अन्त में जिन महानुभावों ने मेरे इस सम्पादन के कार्य में सहयोग दिया है मैं उनका हृदय से आभार मानता हूँ और उनकी इस सहृदयता के लिए कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

रक्षाबन्धन
संवत् २००६
(तीवरी मारवाड़)

मुनि मधुकर जैन

भूमिका



मनुष्य इन्द्रियों का गुलाम है। वासनाओं का दास है। वह अपनी उद्दाम लिप्साओं को पूर्ण करने के लिए हरे भरे उद्यानों को रेगिस्तान बना देता है। गगनचुम्बी प्रासादों को भूमिसात् कर देता है। समृद्ध शाली नगरों को श्मशान बना डालता है। सभ्यता संस्कृति और धर्म का गला घोंट देता है। सुख एवं आमोद-प्रमोद से पुलकित गृहों को शून्य कर डालता है। लाशों से पटे हुए धरातल को देखकर वह अट्टहास करता है। करुण चीत्कारों को सुन कर मन ही मन प्रसन्न होता है। वह अपनी विजय पर मतवाला होकर नाचने लगता है।

किन्तु यह नशा अधिक समय तक नहीं रहता। वास्तविकता का भान होते ही उसे अपनी विजय अखरने लगती है। मन में एक तीखी चुभन-सी होती है। उसे अपने किए पर पश्चात्ताप होता है। अपनी लगाई हुई आग में वह स्वयं जलने लगता है। उस समय वह अपने को कितना असहाय कितना निर्बल, कितना दीन कितना दुःखी पाता है? अपनी हुंकार से भीषण दुर्गों को कम्पित करने वाला वह अभिमानी अपने को संसार में सब से अधिक हीन मानता है। वह अन्दर ही अन्दर रोता है।

ऐसा क्यों है? वह कौनसी शक्ति है जो उसे दबोच डालती है? इसी का उत्तर हमें उनकी वाणी में मिलता है जो अकिंचन होने पर भी महापुरुष कहे जाते हैं। जो एकदम सेवक होने पर भी स्वामी कहे जाते हैं। वे दूसरे को मारकर महावीर नहीं बनते किन्तु मार खाकर महावीर बनते हैं। वे दूसरे को कष्ट देकर सुखी नहीं बनते हैं, किन्तु दूसरों के कष्ट उठाकर स्वयं

सखी बनते हैं। वे किसी लालसा से प्रेमी नहीं बनते किन्तु समस्त शक्ति केवल लिए प्रेमी बनते हैं। दूसरे के भोजन के लिए वे स्वयं ईंधन बन जाते हैं। दूसरे घर को प्रकाशित करने को स्वयं दीपक बन जाते हैं।

उनकी वाणी में न तो शब्दाडम्बर होता है न तार्किकों-सी छानबीन और न वैयाकरणों-सी मात्रालाघव की मारामारी। वे तो सीधी-सादी भाषा में सब कुछ कह जाते हैं। उनमें न किसी प्रकार की कृत्रिमता होती है और न बनावट।

शब्द-शास्त्र के पारंगत कह सकते हैं उनकी बातों में पुनरुक्ति है असम्बद्धता है अलंकार है। किन्तु यह उनकी अपनी बात है। वे अपनी आँखों पर लगे रंगीन काँच में से सब कुछ देखना चाहते हैं। अपने पास वाले तराजू पर सब कुछ तौलना चाहते हैं। सूर्य के प्रकाश को छोड़ कर अपने मिट्टी के दीपक से समस्त भूमण्डल को प्रकाशित करना चाहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो पुनरुक्ति उन्हीं के लिए दोष है जो किसी एक वस्तु पर टिकना नहीं जानते। जिन के प्रेम होने का अर्थ है नित नए पात्र खोजना। वे वस्तु में अन्तर्निहित उस सौन्दर्य को नहीं देख पाते जो एक होने पर भी सदा नवीन है।

कोयल की कुहू ध्वनि सदी काल से वैसी ही है। फिर भी वह हमारे लिए प्रतिक्षण नई है। हम अपने प्रेम पात्र का एक ही शब्द बार-बार सुनना चाहते हैं। पता नहीं उषा की सुनहरी किरणें सर्वप्रथम कब चमकी थीं किन्तु तब से अब तक वैसी ही हैं फिर भी नई हैं। सूर्य का प्रकाश बिजली की चमक मेघों का गर्जन नदी की धारा चाँद की चाँदनी सभी वैसे ही तो हैं जैसे आदि काल में थे। क्या इससे पुराने पड़ गए? उनकी नवीनता अब भी अक्षुण्ण है।

शाश्वत सत्य का प्रकाशित करने वाली सन्तों की वाणी भी इसी प्रकार सदा नई है। एक ही बात बार-बार कहने पर भी उसका माधुर्य कम नहीं होता। पुनरुक्ति के समान प्राचीनता भी उनके सौन्दर्य को कम नहीं कर सकती। वह प्राचीन होने पर भी सदा नवीन है।

भगवान महावीर अहिंसा के प्रवर्तक थे और पुजारी भी। वे स्वयं ही मूर्तिकार हैं स्वयं ही उस के प्रतिष्ठापक और स्वयं ही पुजारी।

भगवान् ने देखा लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे हैं। इसके लिए वे दूसरे को कष्ट देते हुए या नष्ट करते हुए भी नहीं हिचकते। इस प्रकार स्वार्थों का परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। परिणाम स्वरूप कोई भी सुखी नहीं रह पाता है। सुखी होने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य किसी को कष्ट न दे। अपने स्वार्थ के लिए कोई किसी की हानि न पहुँचाए। यहीं से अहिंसा का प्रारम्भ होता है।

इसी का पूर्ण साक्षात्कार करने के लिए भगवान् ने राजवैभव छोड़ दिया। सिंह-व्याघ्र आदि अन्य पशुओं से भरे हुए जंगल में समाधि लगाई। क्रूरकर्मा हिंसक लोगों में विचरण किया। सभी प्रकार के कष्टों को सहा किन्तु मन को विचलित न होने दिया। कानों में कीलें ठोंकने वाले किसान को भी अपना निकट सम्बन्धी माना।

धीरे धीरे उन्होंने देखा कि हिंसकों का हृदय पलट रहा है। जो उन्हें मारने दौड़ते थे वे अब पैरों में लोट रहे हैं। जो उन पर क्रोध करते थे वे अब शान्त और अहिंसक बन गए हैं।

यह हिंसा पर अहिंसा की विजय थी। राक्षसी वृत्तियों पर दैवी शक्तियों की विजय थी। इस विजय का कारण भगवान् की परम दृढ़ आत्म शक्ति थी। इसके लिए सेना आदि किसी हिंसक साधन को नहीं अपनाया गया।

इसके साथ भगवान् ने एक बात और देखी। वह था विचारों का संघर्ष। एक व्यक्ति दूसरे को झूठा कहता है और दूसरा पहले को। इस प्रकार दोनों लड़ पड़ते हैं। वस्तुतः देखा जाय तो वे दोनों सच्चे हैं किन्तु उनकी दृष्टि एकांगी है। अपनी अपनी दृष्टि से दोनों सच्चे हैं। इस प्रकार स्याद्वाद की स्थापना हुई। इस को बौद्धिक अहिंसा भी कहा जा सकता है।

सत्य अचौर्य अपरिग्रह आदि जितने व्रत हैं वे एक दृष्टि से अहिंसा के ही पोषक हैं। असत्य बोलकर मनुष्य दूसरे को धोखा देता है जो हिंसा का एक रूप है। चोरी से भी दूसरे को कष्ट होता है। किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार जमा कर बैठ जाना तथा दूसरे को उससे वंचित रखना परिग्रह है। यह भी हिंसा ही है। सार्वजनिक उपयोग की वस्तु पर एकाधिपत्य जमाना भी हिंसा है।

भगवान् महावीर ने अहिंसा का विस्तार करते हुए इन सब बातों को ध्यान में रखा। इसलिए पाँच महाव्रत बताए।

जो साधु के उग्र मार्ग पर नहीं चल सकते उनके लिए श्रावकधर्म बताया।

प्रस्तुत पुस्तक आचारांग सूत्र के प्रथम द्वितीय व तृतीय अध्ययनों के वाक्यों का संग्रह है। इसमें जो उपदेश दिया गया है वह साधु तथा सभी के लिए प्रेरक एवं स्फूर्तिदायक है।

पुस्तक में वाक्यों का क्रम वह नहीं है जो मूल-सूत्र में है। उन्हीं वाक्यों को छह प्रकरणों में बाँट दिया गया है। जो वाक्य जिस प्रकरण में उचित जान पड़ा उसे वहीं रखा गया है। वाक्यों के इस उलटफेर के लिए लेखक क्षम्य ही नहीं है प्रशंसनीय भी है। उसने समाज के सामने एक उपयोगी सामग्री रखी है। इस पद्धति के द्वारा हम आगम साहित्य को जनता

सामने अधिक आकर्षक एव सुरुचि पूर्ण ढग से रख सकते हैं। प्रचार एव पयोगिता की दृष्टि से भी यह पद्धति अनुकरणीय है।

अपनी संस्कृति तथा साहित्य के प्रति श्रद्धा होना समाज के जीवन का चिह्न है। अपने महापुरुषों का सन्मान करना तथा उनके जीवन एव वाणी से स्फूर्ति प्राप्त करना किसी भी दृष्टि से बुरा नहीं कहा जा सकता। किन्तु वह श्रद्धा सजीव होनी चाहिए। उसमें विकास तथा सस्कार की गुजायश होनी चाहिये। निर्जीव श्रद्धा तो समाज को मृत्यु की ओर ले जाती है। अपने आगमों में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए हम उसमें विकास करना चाहिए। उन्हें नए युग के लिए उपयोगी बनाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें उन्हें [illegible] डालना चाहिए। आगमों में जो शिक्षाएं हैं वे तो शाश्वत सत्य हैं। उनकी जितनी आवश्यकता दो हजार वर्ष पहले थी उतनी ही अब भी है और उतनी ही दो हजार वर्ष बाद भी रहेगी। जब तक अन्धकार है, प्रकाश की आवश्यकता नहीं मिट सकती। जब तक मानव हृदय और उसके साथ उसकी उलझनें लगी हुई हैं तब तक पथ प्रदर्शन के लिए सन्त वाणी की आवश्यकता रहेगी ही। किन्तु उस वाणी को इस रूप में रखना चाहिये जिस से नई सन्तान भी लाभ उठाए।

ससार में सबसे अधिक बाइबिल का प्रचार है। इसका मुख्य कारण यह है कि दुनिया में ऐसी कोई सभ्य भाषा नहीं है जिसमें उसका अनुवाद न हुआ हो। दूसरा कारण यह है कि वह नए-नए रूपों में जनता के सामने आता है। हमें भी चाहिये कि आगम साहित्य को नए नए रूपों में जनता के सामने रखें।

गत युद्ध ने वैज्ञानिक सभ्यता का दिवाला निकाल दिया है। उसने सभ्यता और संस्कृति की डींग हाकने वाले राष्ट्रों को पशु से भी बुरा बना दिया। मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना दिया। इस समय समस्त ससार

को एक ऐसे पथ की आवश्यकता है जो पुनः शांति की ओर ले जाय जो विश्व-बन्धुत्व तथा प्रेम का पाठ पढ़ा सके जो मनुष्य को पशुत्व से ऊँचा उठा कर देव बना सके। यह अहिंसा द्वारा ही सम्भव है। यह जैन दर्शन के लिए आग आने का समय है। यह मौका है जब हम अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करना चाहिये। इस समय जैन समाज को समस्त विश्व में अहिंसा का झण्डा लहराना चाहिए।

किन्तु यह बात स्थानक में बैठ कर पुरानी लकीर पीटने से न होगा। इस समय एक ओर हमें अपना परिष्कार करना चाहिये दूसरी ओर जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहिए।

हम देख रहे हैं कि समाज में ऊपरी बातों पर जितना ध्यान दिया जा रहा है उतना मूल बातों पर नहीं। जितना लक्ष्य बाह्य क्रियाकाण्ड पर है उतना आत्मशुद्धि पर नहीं है। भगवान् महावीर की माला फेरने का जितना ध्यान रखते हैं उतना उनके आदर्श पर चलने का नहीं रखते। थोकड़े चितारते तो हैं किन्तु उनका अपनी आत्मा के साथ मिलान नहीं करते। कषायविजय पर बहुत कम ध्यान देते हैं। इसी प्रकार शास्त्रों की पूजा दोनों हाथ जोड़कर करते हैं उनकी शिक्षाओं को जीवन में उतार कर नहीं।

दुनिया के सामने जैनधर्म का आदर्श रखने के लिए हमें स्वयं आदर्श बनना होगा। तभी शास्त्रों की सजीव पूजा हो सकेगी।

विद्वद्वर पूज्य श्री मिश्रीलालजी महाराजने शास्त्रों की बातों को सर्वसुलभ बनाने के लिए जो यह प्रयास किया है वह प्रशंसनीय है।

आशा है मुनि श्री अपने प्रयत्न को जारी रखेंगे।

रक्षाबन्धन २००४
इन्द्रलोक भिवानी

इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम० ए०
अध्यक्ष, संस्कृत तथा हिन्दी विभाग
वैश्य कालेज, भिवानी

जागरण

विषयानुक्रम

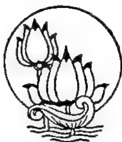


जा ग र णा

श्री आचाराङ्ग-सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्ययन में से संकलित

अकारादि अनुक्रमणिका

बाल	(वित्र)	१४	२	
बान	(मुक्ता०)	७	२	३
भानि	(तिरे)	१	२	३
लद्दे	(मन्ा०)	७	२	५
लाभुाल	(महा०)	८	२	५
लायाग	(नाग)	७	३	१
गिनाति	(महा०)	३	२	४
तिमुना	(महा०)	२	२	२
निगम	(जाग०)	१८	३	३
म े	(हेमुान०)	९	२	६
मनुत्रि	(महा)	४	२	५
मन्त्रया	(मुक्ता०)	११	३	४
मर्गन्था	(हमुनि)	६		३
मेगा	(विव)	६	२	६
मोआम माह	(महा)	१२	३	९
मुना	(जाग)	१	३	१
म अवतु	(वि०)	८	२	३
म अम	(श्राव०)	३	२	३
म आयन	(नाग०)	६	३	१
मे न न	(जाग०)		२	८
मे त	(हेमुनि०)	११	२	५
मे न	(हेमुनि०)	१३	२	५
मे मन्म	(ना ०)	३	२	५
मे धना	(महा०)	११	३	४
मधि	(जाग०)	१७	१	



श्रीमान् तेजमलजी साहिब पारख



आप तीवरी (मारवाड) के एक बहुत अच्छे प्रतिष्ठित और भद्र प्रकृति व सज्जन पुरुष हैं। आपने इस पुस्तक के प्रकाशन में २००) रुपया की सहायता दी है एतदर्थ धन्यवाद।

卐 णमोत्थु णं तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

: १ :

जा ग र ण

—

"सुत्ता अमुणी
मुणिणो सया जागरंति"



(१)

सुत्ता अमुणी।
मुणिणो सया जागरंति।

(२)

आम च छन्‍ च विगिंच धीरे!
तुम चेव त सल्लमाहट्टु।

(३)

जेण सिया तेण णो सिया।
इणमेव नावबुज्झति जे जणा मोह-पाउडा।

(४)

थीभि लोए पव्वहिए।
ते भो वयति "एयाइ आयतणाइ"
से दुक्खाए, मोहाए, माराए,
नरगाए नरग-तिरिक्खाए।

(१)

सोने वाले मुनि नहीं होते,
मुनि तो सदा जागते रहते हैं।

(२)

ओ धीर पुरुष!

भोगों की आशा और लालसा छोड़ दे। तू स्वयं इन बातों को लेकर दु:खी हो रहा है।

(३)

तुम जिनमें सुख की आशा रखते हो, वस्तुतः वे सुख के कारण नहीं हैं। मोह में घिरे हुए लोग इस बात को नहीं समझते।

(४)

सारा संसार स्त्रियों के प्रति अपनी आसक्ति के कारण दुःखी है। परिवार के मोह में फँसे हुए लोग कहते हैं कि स्त्री-आदिक परिवार सुख का साधन है परन्तु वास्तव में देखा जाय तो यह सब दुःख, मोह, मृत्यु, नरक और नीच गति (पशुयोनि) का कारण है।

(५)

मयय मूढे धम्म नाभिजाणइ ।

(६)

उदाहु वीरे अप्पमाओ महा-मोहे ।
अल कुसलस्स पमाएण ।
सति मरण सपेहाए ।
भेउरधम्म सपेहाए ।
नाल पास अल ते एएहि ।

(७)

से मइम परिन्नाय मा य हु लाल पच्चासी ।
मा तेसु तिरिच्छ–मप्पाण–मावायए ।
कास कासे खलु अय पुरिसे ।
बहु माई कडेण मूढे ।
पुणो त करेइ लोह वेर वड्ढेइ अप्पणो ।
जमिण परिकहिज्जइ इमस्स चेव पडिवूहणयाए ।
अमरायइ महासड्ढी अट्टमेय तु पेहाए ।
अपरिण्णाए कन्दइ ।

(५)

विषयों में आसक्त मूढ़ मनुष्य आत्मशांति के कारण भूत वास्तविक धर्म को कभी नहीं पहचानता।

(६)

भगवान महावीर ने कहा है कि धीर पुरुष स्त्री तथा दूसरे विषयों के महा-मोह से सदा सावधान रहें। कुशल व्यक्ति कभी प्रमाद न करें। शांति के साथ मरण का स्वीकार करें। इस शरीर को नश्वर समझें। सभी सांसारिक सुख अधूरे हैं अतः इनसे अलग रहें।

(७)

बुद्धिमान पुरुष संसार के स्वरूप की वास्तविकता को पहचान कर इस प्रकार उसका परित्याग करें जैसे थूक कर उसे फिर चाटा नहीं जाता। ज्ञान दर्शन आदि में उदासीनता न रक्खे। पुरुष सदा यही सोचता रहता है कि मैंने यह कर लिया और अब यह करूँगा। इसके लिए वह विविध प्रकार के माया जाल रचता रहता है। विविध कार्यों के मोह में फँसा रहता है। बार बार लोभ करता है और अपनी ही आत्मा के साथ शत्रुता बढ़ाता है अर्थात अपनी ही हानि करता है। संयम आदि की वृद्धि के लिए ही मैं यह बात बार-बार कहता हूँ।

कामभोगों में श्रद्धा रखने वाला मनुष्य देवताओं का अनुकरण करता है। किन्तु देवता भी उपाधियों से घिरे रहते हैं अतः यह जान कर उस ओर रुचि न करनी चाहिए। जो व्यक्ति इस बात को नहीं जानता, वह दुःखों में फँस कर रोता रहता है।

(८)

तं परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोगं
वंता लोग-सन्नं से मइमं परक्कमिज्जासि।

(९)

नारइं सहए वीरे, वीरे न सहए रइं।
जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे न रज्जइ॥

(१०)

से जं च आरभे जं च नाऽऽरभे।
अणारद्धं च न आरभे छणं छण-
परिण्णाय लोग-सन्नं च सव्वसो।

(८)

यह जानकर बुद्धिमान पुरुष लोक-स्वभाव को न भूले तथा लौकिक एषणाओं का त्याग करके संयम में पराक्रम करे अर्थात संयमशील बने।

(६)

वीर पुरुष संयमानुष्ठान से कभी विरक्त नहीं होता और न विषयभोगों में रति करता है। वह न कभी उदास होता है और न कभी आसक्त ही।

(१०)

यह मुमुक्षु जिन संयम आदि कार्यों का अनुष्ठान करता है और जिन मिथ्यात्व आदि का परित्याग करता है, दूसरे व्यक्तियों को भी उन कार्यों को करना चाहिए अथवा उनका परित्याग करना चाहिए। प्रतिक्षण लोकस्वभाव का ध्यान रखकर ऐसा कोई कार्य न करें जिसे तीर्थङ्करों या महापुरुषों ने न किया हो।

(८)

तं परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोगं
वंता लोग-सन्नं से मइमं परक्कमिज्जासि ।

(९)

नारइं सहइ वीरे, वीरे न सहइ रइं ।
जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे न रज्जइ ॥

(१०)

से जं च आरभे जं च नाऽऽरभे ।
अणारद्धं च न आरभे छणं छण-
परिण्णाय लोग-सन्नं च सव्वसो ।

(८)

यह जानकर बुद्धिमान् पुरुष लोक-स्वभाव को न भूल तथा लौकिक एषणाओं का त्याग करके संयम में पराक्रम कर अर्थात संयमशील बने।

(९)

धीर पुरुष संयमानुष्ठान से कभी विरक्त नहीं होता और न विषयभोगों में रति करता है। वह न कभी उदास होता है और न कभी आसक्त ही।

(१०)

वह मुमुक्षु जिन संयम आदि कार्यों का अनुष्ठान करता है और जिन मिथ्यात्व आदि का परित्याग करता है दूसरे व्यक्तियों को भी उन कार्यों को करना चाहिए अथवा उनका परित्याग करना चाहिए। प्रतिक्षण लोकस्वभाव का ध्यान रखकर ऐसा कोई कार्य न करें जिसे तीर्थङ्करों या महापुरुषों ने न किया है।

(११)

लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं ।
समयं लोगस्स जाणित्ता,
एत्थ सत्थोवरए ।

(१२)

जस्सिमे सद्दा य, रूवा य, रसा य, गंधा य,
फासा य, अभि-समन्नागया भवंति,
से आयवं, नाणवं, वेयवं, धम्मवं, बंभवं,
पन्नाणेहिं परियाणइ लोयं
मुणी ति वुच्चे धम्मविऊ उज्जू
आवट्ट-सोए संग-मभिजाणइ ।

(१३)

पासिय आउरे पाणे
अप्पमत्तो परिव्वए ।

(१४)

कम्मं च पडिलेहाए—
कम्म-मूलं च जं छणं,
पडिलेहिय सव्वं समायाय
दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे ।

(११)

इस बात को ठीक समझो कि संसार में दुःख देना किसी के लिए हितकर नहीं है। संसार के सभी प्राणियों को एक समान जान कर मनुष्य को हिंसा छोड़ देनी चाहिए।

(१२)

जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श रूप इन्द्रिय विषयों को पहचानता है, वही आत्मवान, ज्ञानी, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा तथा ब्रह्मनिष्ठ है। वही अपने उत्तम ज्ञान के द्वारा लोक के वास्तविक स्वरूप को पहचानकर मुनि कहलाता है। वही ज्ञानी, धर्मवेत्ता तथा सरल माना गया है और वही संसार तथा विषयों के बन्धन को भलीभांति जान लेता है।

(१३)

मनुष्य को चाहिए कि वह संसार के सभी प्राणियों को दुःखी समझे, प्रमाद का त्याग करके संयम को अङ्गीकार करे।

(१४)

कर्मों के स्वरूप को जानना चाहिए और कर्म-बन्ध के मूल कारण हिंसा को समझना चाहिए। इन दोनों को अच्छी तरह जानकर दोनों का परिहार करना चाहिए।

(१५)

नाह च पुरिंद्द न इहत्थ ! पाम । '
भूणहिं जाग पडि-लेह माय ॥
तम्हा इ-विजो 'परम' ति नच्चा, ।
सम्मत्त-दमी न करेइ पाव ॥

(१६)

उम्मु च पास इह मच्चिएहिं ।
आरमजीवी उमयाणु-पस्सी ॥
कामेसु गिद्धा निचय करति ।
समिच्चमाणा पुणरिंति गब्म ॥

(१७)

अवि से हास-मासज्ज,
' हता नदी' ति मन्नइ ।
अल बालस्स सगेण,
वेर वड्ढइ अप्पणो ।

(१८)

तम्हा इ-विज्जो 'परम' ति नच्चा,
आयक-दंसी न करेइ पावं ।
अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे
पलि-छिंदियाणं निक्कम्म-दंसी ।

(१९)

बहुं च खलु पाव-कम्मं पगडं ।
सच्चम्मि धिइं कुव्वह ।
एत्थोवरए मेहावी-
सव्वं पाव-कम्मं झोसेइ ।

(१८)

इसलिए विद्वान परम-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त भयातुर होकर कभी पाप नहीं करता।
ओ धीर पुरुष!

कर्म बन्ध के सभी कारणों को छोड़ दे। संयम द्वारा राग द्वेष आदि कर्मबन्ध के कारणों का नष्ट करके आत्मा को कर्म रहित बना।

(१९)

संसार में चारों ओर कर्मों का जाल फैला हुआ है। इसलिए संयम की शरण लेकर धैर्य धारण करो।

जो बुद्धिमान संयम अङ्गीकार कर लेता है वह पाप कर्मों को भस्म कर डालता है।

(२०)

हे जीव!

आत्मा पर कर्मों का परदा पड़ा हुआ है। निर्मल अध्यवसाय तथा जन्म-जन्मान्तरों के सुकृतों से क्षण भर के लिए इस परदे में छिद्र हो गया है। तुझे आत्मा का धुन्धला दर्शन हो रहा है। अब प्रमाद मत कर। जैसा तू अपने आपको समझता है वैसे ही दूसरों को भी समझ। प्राणियों की हिंसा न तो स्वयं कर और न दूसरों को करने के लिए प्रेरित कर।

(१८)

तम्हा इ-विज्जो 'परम' ति नच्चा,
आयङ्क-दसी न करेइ पाव ।
अग्ग च मूल च विगिंच धीरे !
पलि-छिंदियाण निक्कम्म-दसी ।

(१६)

नहु च खलु पाव कम्म पगड ।
सच्चम्मि धिइ कुव्वह ।
एत्थोवरए मेहावी-
सव्व पाव-कम्म झोसेइ ।

(२०)

* सधिं लोगस्स जाणित्ता ।
आयओ बहिआ पास,

(२१)

मुमुक्षु पुरुष रूप आदि इन्द्रिय-विषयों से विरक्त रहे। ये विषय चाहे दिव्य (अलौकिक) हों या मानुष (लौकिक)।

(२२)

संसार के आवागमन को जानने वाला तथा राग और द्वेष से रहित मनुष्य न किसी के द्वारा छेदा जा सकता है, न भेदा जा सकता है, न जलाया जा सकता है और न मारा जा सकता है।

(२३)

हे भव्य पुरुष! आत्मा को वश में कर। इस प्रकार तू दुःखों से छूट जायगा।

हे पुरुष! सत्य को पहिचान। जो बुद्धिमान् सत्य की आज्ञा पर चलता है वह संसार-सागर को पार कर जाता है। ज्ञान, चारित्र आदि से युक्त वह पुरुष * श्रुत और † चारित्र रूप धर्म स्वीकार करके चारों ओर श्रेय अर्थात् आत्मकल्याण को देख लेता है।

---

* श्रुतधर्म—अंग उपांग आदि आगम।

† चारित्रधर्म—इन्द्रियसंयम तथा व्रतपालन आदि क्रियाएँ।

(२१)

विराग रूवेहिं गच्छेज्जा-
महया खुड्डएहिं य ।

(२२)

आगइ गइं परिण्णाय-
दोहिं वि अंतेहिं अदिस्समाणेहिं,
से न छिज्जइ, न भिज्जइ,
न डज्झइ, न हम्मइ,
कचण सव्व-लोए ।

(२३)

पुरिसा !
अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ,
एव दुक्खा पमुच्चसि ।

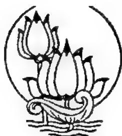
पुरिसा !
सच्चमेव समभिजाणाहि ।
सच्चस्स आणाए उवट्ठिए-
मेहावी मार तरइ,
सहियो धम्म-मायाय सेय
समणुपस्सइ ।

: २ :

आ व र्त्त

"धीरो मुहुत्तमपि णो पमायए
वओ अच्चेइ जोवण च"





(१)

इन्द्रियों के विषय को ही संसार कहते हैं और संसार ही इन्द्रियों का विषय है।

अर्थात् इन्द्रिय विषयों की आसक्ति ही संसार है।

(२)

जो विषयभोग हैं, वे ही संसार के मूल स्थान हैं, जो संसार के मूल स्थान हैं वे ही विषयभोग हैं। जो विषय-लोलुप होता है वह विषयाधीन तथा प्रमादी होने के कारण बार-बार दुःख भोगता रहता है।

वह प्राणी, मेरी माता, मेरे पिता, मेरा भाई, मेरी बहिन, मेरी स्त्री, मेरे पुत्र, मेरी पुत्री, मेरी पुत्रवधू, मेरे मित्र, मेरे सगे सम्बन्धी, मेरे परिचित, मेरे भोग विलास के साधन, मेरी सपत्ति, मेरे खान पान तथा वस्त्र इत्यादि अनेक झंझटों में फँसा रहता है और असावधान रहकर निरंतर हिंसा करता रहता है। दिन-रात आसक्त रहता है। समय तथा असमय का भी ध्यान नहीं रखता। कुटुम्ब-परिवार तथा धन के मोह में फँसा रहता है। विषयासक्त होकर बिना किसी भय के लूट-मार तथा प्राणियों की हिंसा करने लगता है। विवेकशक्ति को खो बैठता है तथा सदा ऐहिक भोगों में लीन रहता है।

(१)

जे गुणे से आवट्टे ।
जे आवट्टे से गुणे ।

(२)

जे गुणे से मूलट्ठाणे
जे मूलट्ठाणे से गुणे ।
इति से गुणट्ठी महया परियावेण
पुणो पुणो वसे पमत्ते ।
माया मे, पिया मे, भाया मे, भइणी मे,
भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, एहुसा मे,
सहि सयण-सगन्थ-सथुया मे,
विवित्तुवगरण-परियट्टण भोयण-च्छायण मे ।
'इच्चत्थं गढिए लोए' वसे पमत्ते ।
अहो य राओ परितप्पमाणे काला-काल-समुट्ठाई
संजोगट्ठी अत्थालोभी आलुंपे सहसाकारे
विणिविट्ठ चित्ते 'एत्थ सत्थे' पुणो पुणो

(३)

यही जीव अनेक बार उच्च गोत्र में जन्म ले चुका है और अनेक बार नीच गोत्र में। इस लिए न कोई हीन है और न कोई ऊँच। अतः उच्च गोत्र आदि मदस्थानों की इच्छा भी न करनी चाहिए। इस बात पर विचार करने के बाद भी कौन अपने गोत्र का ढिंढोरा पीटेगा ? अथवा अभिमान करेगा ? वह किस बात के लिए मोह करेगा ? इसलिए न तो हर्ष करना चाहिए और न क्रोध ही।

(४)

जो व्यक्ति क्रोध करता है वह मान भी करता है और जो मान करता है वह माया का भी सेवन करता है। जो माया का सेवन करता है वह लोभ भी करता है और जो लोभ करता है वह इन्द्रियविषयों से स्नेह भी करता है। जो स्नेह करता है वह द्वेष भी करता है। जो द्वेष करता है वह मोह में भी फँसता है जो मोह में फँसता है उसे गर्भ भी देखना पड़ता है। जो गर्भ देखता है उसका जन्म भी होता है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। जिसकी मृत्यु होती है उसे नरक भी देखना पड़ता है। जो नरक देखता है वह तिर्यंच गति में भी जा सकता है, उसे दुःख भी देखने पड़ते हैं।

इस लिए बुद्धिमान् क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मृत्यु, नरक गति, तिर्यंच गति और दुःख सभी से दूर रहे।

सभी जीवों पर दया करने वाले संसार के पारगामी सर्वदर्शी भगवान का यही सिद्धान्त है।

(३)

से असइं उच्चा-गोए असइं नीया-गोए
नो हीणे, नो अइरित्ते नोऽपीहए
इइ संखाए को गोयवाई ? को माणवाई ?
कंसि वा एगे गिज्झे ? तम्हा नो हरिसे नो कुप्पे।

(४)

जे कोह-दसी से माण-दसी, जे माण-दसी से माया-दसी,
जे माया-दसी से लोभ-दसी, जे लोभ-दसी से पिज्ज-दसी,
जे पिज्ज-दसी से दोस-दसी, जे दोस-दसी से मोह-दसी,
जे मोह-दसी से गब्भ-दसी, जे गब्भ-दसी से जम्म-दसी,
जे जम्म-दसी से मार-दसी, जे मार-दसी से नरय-दसी,
जे नरय-दसी से तिरिय-दसी, जे तिरिय-दसी से दुक्ख-दसी।

से मेहावी अभिणिवट्टेज्जा—

कोहं च माणं च मायं च लोहं च
पिज्जं च दोसं च मोहं च गब्भं च
जम्मं च मारं च नरयं च तिरियं च दुक्खं च
एयं पासगस्स दंसणं उवरय-सत्थस्स पलियंत-करस्स ।

(३)

यही जीव अनेक बार उच्च गोत्र में जन्म ले चुका है और अनेक बार नीच गोत्र में। इस लिए न कोई हीन है और न कोई ऊँच। अत उच्च गोत्र आदि मदस्थानों की इच्छा भी न करनी चाहिए। इस बात पर विचार करने के बाद भी कौन अपने गोत्र का ढिंढोरा पीटेगा ? अथवा अभिमान करेगा ? वह किस बात के लिए मोह करेगा ? इसलिए न तो हर्ष करना चाहिए और न क्रोध ही।

(४)

जो व्यक्ति क्रोध करता है वह मान भी करता है और जो मान करता है वह माया का भी सेवन करता है। जो माया का सेवन करता है वह लोभ भी करता है और जो लोभ करता है वह इन्द्रियविषयों से स्नेह भी करता है। जो स्नेह करता है वह द्वेष भी करता है। जो द्वेष करता है वह मोह में भी फँसता है जो मोह में फँसता है उसे गर्भ भी देखना पड़ता है। जो गर्भ देखता है उसका जन्म भी होता है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु भी होती है। जिसकी मृत्यु होती है उसे नरक भी देखना पड़ता है। जो नरक देखता है वह तिर्यच गति में भी जा सकता है, उसे दु ख भी सहने पड़ते हैं।

इस लिए बुद्धिमान क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म मृत्यु, नरक गति, तिर्यच गति और दु ख सभी से दूर रहे।

सभी जीवों पर दया करने वाले ससार के पारगामी सर्वदर्शी भगवान का यही सिद्धान्त है।

(५)

एग विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ
पुढो विगिंचमाण एग विगिंचइ

(६)

जीविए इह जे पमत्ता—
से हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपित्ता
विलुंपिता, उद्दवेत्ता उत्तासइत्ता
'अकड करिस्सामि' त्ति मन्नमाणे ।
जेहिं वा सद्धिं सवसति ।
ते वा ण एगया णियगा पुव्वि पोसति
सो वा ते णियगे पच्छा पोसेज्जा
णाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा
तुम पि तेसिं णाल ताणाए वा सरणाए वा ।

(५)

जो व्यक्ति एक *अनन्तानुबंधी प्रकृति का क्षय कर देता है वह दूसरी प्रकृतियों का भी क्षय कर डालता है। जो दूसरी प्रकृतियों का क्षय करता है वह अनन्तानुबंधी का भी अवश्य क्षय करता है।

(६)

जो लोग जीवन के इस रहस्य पर ध्यान नहीं देते वे अज्ञान तथा मिथ्याभिमान से प्रेरित होकर ऐसे कार्यों को करना चाहते हैं जिन्हें उनकी दृष्टि में किसी ने नहीं किया। वे सांसारिक सुखों के लिए प्राणियों को मारते हैं, काटते हैं, छेदते हैं, भेदते हैं तथा विविध प्रकार से त्रास देते हैं। फिर भी उनकी इच्छा पूरी नहीं होती। वे कुटुम्ब का पोषण करने के लिए सब कुछ करते हैं। किन्तु उनके अपने पोषण का भार भी कुटुम्ब को उठाना पड़ता है। यदि किसी प्रकार कुछ प्राप्ति भी हो जाती है और वे कुटुम्ब का पोषण भी करने लगते हैं तो भी कुटुम्बियों में से कोई भी उनको नहीं बचा सकता है, न शरण दे सकता है तथा वे भी न उन्हें बचा सकते हैं और न शरण दे सकते हैं।

---

* वह तीव्र कषाय-जो सम्यक्त्व की प्राप्ति में बाधक बनता है।

(७)

अणेग-चित्ते खलु अयं पुरिसे—
से केयणं अरिहत्तए पूरित्तए
से अन्नवहाए अन्न-परियावाए
अन्न-परिग्गहाए, जणवय-वहाए
जणवय-परियावाए, जणवय-परिग्गहाए

(८)

अहो य राओ परितप्पमाणे
काला-काल-समुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी
आलुंपे सहस-क्कारे विणिविट्ठ-चित्ते
एत्थ सत्थे पुणो पुणो।
से आय-बले, से नाइ-बले, से मित्त-बले,
से पिच्च-बले, से देव-बले, से राय-बले,
से चोर-बले, से अतिहि-बले, से किविण-बले, से समणबले,
इच्चेएहिं विरूव-रूवेहिं कज्जेहिं
दंड समायाणं सपेहाए भया कज्जइ
पाव-मुक्खु त्ति मन्नमाणे अदुवा आससाए

(७)

मनुष्य की इच्छाएँ अनेक प्रकार की होती हैं। वह चलनी में समुद्र भरना चाहता है। वह दूसरों का वध करता है, उन्हें दुःख देता है तथा उन पर अधिकार जमाना चाहता है। वह बड़े बड़े भूखण्डों का नाश कर डालता है, सारे देशवासियों को कष्ट पहुंचाता है तथा उन पर आधिपत्य जमाना चाहता है।

(८)

अज्ञान पुरुष दिन रात दुःखी होता रहता है। उसे समय असमय का ध्यान नहीं रहता। वित्त और वनिता की प्राप्ति के लिए भटकता रहता है। हिंसक तथा क्रूर बन कर विवेक-बुद्धि खो बैठता है। बार-बार शस्त्र अर्थात् जीव हिंसा के कार्य करता रहता है। आत्म बल, जातिबल, मित्र बल, †प्रेत्यबल, देवबल, राजबल, चोरबल, अतिथिबल, कृपण बल, श्रमणबल आदि विविध प्रकार के बलों की प्राप्ति के लिए वह तरह २ के हिंसात्मक कार्य करता रहता है। पाप का क्षय अथवा परलोक में सुख प्राप्ति की आशा से भी अज्ञान जीव आरम्भ समारभ करता रहता है।

---

† परलोक में होने वाला बल। अथवा भूत, प्रेत भैरव भवानी आदि का बल।

(९)

* उवाइय-सेसेण वा सनिहि-सनिचओ किज्जइ
इह एगेसि असनयाण भोयणाए।
तओ से एगया रोग-समुप्पाया समुप्पज्जन्ति
जेहिं वा सिद्धिं संवसइ—
ते वा ण एगया नियगा तं पुव्विं परिहरंति
सो वा ते नियगे पच्छा परि-हरेज्जा
नाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा
तुमं पि तेसिं नाल ताणाए वा सरणाए वा।

(१०)

तं परिण्णाय मेहावी—
नेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारभेज्जा
नेव अन्नं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारभाविज्जा
एएहिं कज्जेहिं दंडं समारभंतं अन्नं न समणुजाणिज्जा
एस मग्गे आरिएहिं पवेइए
जहेत्थ कुसले नोवलिपिज्जासि-

त्ति बेमि

---

* उपादित-भुक्त

(९)

बहुत से असंयमी बचे हुए भोजन को दूसरे दिन खाने के लिए रख छोड़ते हैं। किन्तु समय पाकर उसी भोजन के कारण उनके शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उस समय उनके आत्मीय, जिनके साथ वह चिर-काल से रह रहा है, उसे छोड़ देते हैं, अथवा उसे स्वयं ही स्वजनों को छोड़ देना पड़ता है।

ओ जीव !

वे स्वजन न तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं, न तुम्हें शरण दे सकते हैं। और तुम भी न उनकी रक्षा कर सकते हो, न उन्हें शरण दे सकते हो।

(१०)

यह जानकर बुद्धिमान मनुष्य इन कार्यों के लिए न स्वयं हिंसा करे, न दूसरों को प्रेरित करे और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन ही करे। यह मार्ग श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा बताया गया है।

हे कुशल !

इन पापकार्यों में कभी लिप्त मत होना।

(११)

जेहिं सिद्धिं सवसइ—
ते वि ण एगया णियगा पुव्वं परिवयंति,
सो वा ते णियगे पच्छा परिवएज्जा
णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा
तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा
से ण हासाए ण किड्डाए ण रतीए ण विभूसाए।

(१२)

उमिण विरूव-रूवेहिं सत्थेहिं
लोगस्स कम्म समारंभा कज्जंति

तंजहा—

अप्पणो से पुत्ताण, धुयाण सुण्हाण,
नाईण धाईण राईण दासाण
दासीण कम्म-कराण कम्म करीण
आएसाए पुढो पहेणाए सामासाए,
पाय-रासाए सन्निहि-सचओ कज्जइ,
इह-मेगेसिं माणवाण भोयणाए।

(११)

यह जिनके साथ रहता है वे आत्मीय ही वृद्धावस्था में उसकी निन्दा करने लगते हैं, अथवा यह स्वयं अपने कुटुम्बियों की निन्दा करने लगता है। इसलिए हे जाव! कोई भी तुझे बचाने वाला अथवा शरण देने वाला नहीं है और तू भी किसी को बचाने या शरण देने की सामर्थ्य नहीं रखता। वृद्धावस्था में मनुष्य हँसी, खेल, भोग-विलास, शृङ्गार, आदि किसी के योग्य नहीं रहता।

(१२)

मनुष्य, लोक व्यवहार के लिए विविध प्रकार के शस्त्रों से हिंसा करते हैं। अपने पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, स्वजन, धाय, राजा, दास, दासी, नौकर, नौकरानी, अतिथि, आदि को भेजने के लिए या सायंकाल अथवा प्रातःकाल के भोजन के लिए बहुत से मनुष्य तरह तरह की सामग्री जुटाते हैं।

(१३)

अप्प च खलु आउय इहमेगेसि माणवाण तजहा—

सोय परिएणाणेहि परिहायमाणेहि
चक्खु परिएणाणेहि परिहायमाणेहि
घाण-परिएणाणेहिं परिहायमाणेहिं
रस परिएणाणेहि परिहायमाणेहि
फास परिएणाणेहिं परिहायमाणेहि
अभिक्कत च खलु वय सपेहाए
तओ से एगया मूढ भाव जणयति ।

(१४)

जाव—

सोय परिएणाणा अपरि हीणा
नेत्त परिएणाणा अपरि हीणा
घाण-परिएणाणा अपरि हीणा
जीह परिएणाणा अपरि हीणा
फरिस-परिएणाणा अपरि-हीणा
इच्चेहि विरूव-रूवेहिं पएणाणेहि अपरिहीणेहि ।
आयट्ठ सम्म समणुवासिज्जासि ।

(१३)

मनुष्यों का जीवन अल्प है। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन इन्द्रियों की शक्ति के क्षीण हो जाने पर मनुष्य अपनी आयु क्षीण होती देखकर व्याकुल हो उठता है।

(१४)

जब तक श्रोत्रेन्द्रिय की श्रवणशक्ति, चक्षुरिंद्रिय की दर्शन शक्ति, घ्राणेन्द्रिय की घ्राणशक्ति, रसनेन्द्रिय की स्वादशक्ति और स्पर्शनेन्द्रिय की स्पर्शशक्ति क्षीण नहीं हुई है, तथा जब तक विविध प्रकार की ज्ञान शक्तियाँ क्षीण नहीं हुई हैं तब तक आत्मार्थ की सिद्धि कर लो।

(१५)

इच्चेव समुट्ठिए अहो [1]विहाराए—
अतर च खलु इम सपेहाए
धीरो मुहूत्त-मपि णो पमायए
वयो अच्चेइ जोवण च ।

(१६)

णिज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेय परिनिव्वाणं—
सव्वेसिं [2]पाणाण सव्वेसिं [3]भूयाण
सव्वेसि [4]जीवाण सव्वेसि [5]सत्ताण
अस्साय अपरिनिव्वाण मह-भय दुक्ख ति बेमि
तसति पाणा पदिसो दिसासु य ।

(१७)

जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय
अणभिक्कत च खलु वय सपेहाए
खण जाणाहि पडिए ।

---

(१) अहो विहार-सयम ।
(२) प्राण — द्वीन्द्रिय त्रिन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय त्रसजीव।
(३) भूत — वनस्पति के जीव ।
(४) जाव — पंचेन्द्रिय जीव ।
(५) सत्व— पृथ्वी जल अग्नि और वायु के जीव ।

(१५)

इस प्रकार धीर पुरुष उठे और संयमानुष्ठान के लिए अवसर आया देख कर क्षण भर भी प्रमाद न करे। यौवन और आयु नश्वर हैं।

(१६)

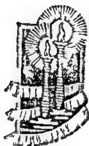
प्रिय शिष्य !

गम्भीर विचार तथा पर्यवेक्षण के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि समस्त प्राणी, समस्त भूत, समस्त जीव तथा समस्त सत्व दुःख से घबराते हैं। सभी के लिए कष्ट दुःखदायी, अशान्ति कर तथा महाभय स्वरूप हैं। दुःख से डरकर प्राणी दिशा तथा विदिशाओं में भागते रहते हैं।

(१७)

हे पण्डित !

सुख और दुःख प्रत्येक प्राणी को सहने पड़ते हैं तथा अब भी आयु शेष है इस बात का विचार करके अवसर को पहिचान। इसे मत भूल।



:: ॐ ::

म हा वी थि

से हु दिट्ठभए मुणी,
लोगसि परमदसी विवित्त-जीवी
उवसत्ते समिए सहिए सया जए
काल-कखी परिव्वए ।

(१)

अणगारे उज्जु-कडे [1]नियाग-पडिवण्णे
अमायं कुव्वमाणे वियाहिए ।
जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा
वियहित्ता [2]विसोत्तियं पणया वीरा महावीहिं ।

(२)

विमुत्ता हु ते जणा —
जे जणा पारगामिणो
लोभ-मलोभेण दुगुंछमाणे
लद्धे कामे नाभिगाहइ ।

(३)

विणावि लोहं निक्खम्म एस अकम्मे
जाणइ पासइ पडिलेहाए नावकंखइ
एस अणगारि त्ति पवुच्चइ।

(४)

समुट्ठिए अणगारे आरिए आरिय-पन्ने
आरिय-दंसी 'अयं सन्धि' त्ति अदक्खु ।
से नाईए नाइआवए न समणुजाणइ
सव्वाम-गंधं परिन्नाय निराम-गंधो परिव्वए ।

---

(१) नियाग = मोक्षमार्ग
(२) विस्रोतसिका = शंका

(१)

जो सरल है, मुमुक्षु है और माया रहित है वही अनगार है। मनुष्य जिस श्रद्धा से गृह त्याग करे, उस पर सदैव स्थिर रहे। उसमें किसी प्रकार की शंका न करे। वीर पुरुष इसी महामार्ग पर चलते हैं।

(२)

जो लोग काम भोगों को छोड़कर ज्ञान दर्शन आदि को प्राप्त करते हैं वे ही वास्तव में मुक्त हैं। वे सन्तोष के द्वारा लोभ पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और अनायास प्राप्त हुए काम भोगों की ओर भी नहीं झुकते।

(३)

जो महापुरुष लोभ का निर्मूलन करके संयम अंगीकार करते हैं वे अनगार कहे जाते हैं तथा शीघ्र ही कर्मों का नाश करके सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी बन जाते हैं।

(४)

संयम के लिए उद्यत आर्य, आर्यप्रज्ञ तथा आर्यदर्शी अनगार विविध प्रकार की समाचारी के समय का ध्यान रखता है। वह दोष वाली वस्तुओं को न स्वयं स्वीकार करता है, न दूसरों को लेने के लिए कहता है और न लेने वाले को अच्छा ही समझता है। सभी प्रकार के सदोष और दुर्गन्ध वाले आहार को जानता है किन्तु निर्दोष आहार का ही सेवन करता हुआ विचरता है।

(५)

अदिस्समाणे कय-विक्कयेसु—
से न किणे, न किणावए, किणन्तं न समणुजाणइ
से भिक्खू कालन्ने, बलन्ने, मायन्ने, खेयन्ने,
खणयन्ने, विणयन्ने, स-समय-परसमयन्ने,
भावन्ने, परिग्गहं अममायमाणे कालाणुट्ठाई अपडिण्णे।

(६)

दुहओ छेत्ता नियाइ,
वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं,
उग्गहणं च कडासणं
एएसु चेव जाणिज्जा ।

(७)

लद्धे आहारे अणगारो मायं जाणेज्जा
से जहेयं भगवया पवेइयं ।

(५)

भिक्षु क्रय विक्रय में कभी नहीं पड़ता । वह न तो स्वयं खरीदता है, न दूसरों को खरीदने के लिए कहता है और न खरीदने वाले का अनुमोदन ही करता है ।

भिक्षु अवसर को जानने वाला, आत्म शक्ति को पहिचानने वाला, भोजन की मात्रा को जानने वाला, विविध कार्यों में होने वाले परिश्रम तथा उनके लिए उचित समय के ज्ञान वाला, ज्ञान दर्शन आदि विनय का जानकार, स्वसिद्धान्त तथा परसिद्धान्त का विद्वान् तथा भावों का ज्ञाता होता है । वह परिग्रह से ममता नहीं करता । समय देखकर कार्य करता है । वह कामनाओं की पूर्ति के लिए संकल्प नहीं करता ।

(६)

भिक्षु राग और द्वेष को नष्ट करके संयम मार्ग में विचरण करता है। वस्त्र, पात्र, कम्बल पाद प्रोञ्छन, अवग्रह, चटाई आसन आदि के विषय में भी वह समभाव रखता है ।

(७)

भगवान् के द्वारा बताये गये आहारादि के परिमाण का ज्ञान मुनि को होना चाहिए ।

(८)

लाभो-त्ति न मज्जेज्जा,
अलाभो त्ति न सोइज्जा ।
बहु पि लद्धु न निहे ।
परिग्गहाओ अप्पाणं—
अव-सक्केज्जा ।

(९)

पत लूह सेवति—
वीरा सम्मत्त-दंसिणो ।
एस ओहतरे मुणी—
तिन्न मुत्ते विरए वियाहिए ।

(१०)

एस मरणा पमुच्चइ—
से हु दिट्ठभए मुणी लोगंसि परमदंसी, विवित्त-जीवी,
उवसंते, * समिए, सहिए, सया जए काल-कंखी परिव्वए ।

*समित —समितियों का पालन करने वाला । समिति-सय" का निर्दोष पालन करने के लिए तथा हिंसा से बचने के लिए बनाए गए सावधानी रखने के पांच नियम (१) ईर्यासमिति —चलते समय सावधानी रखना । (२) भाषा समिति — बोलने में सावधानी रखना । (३) एषणा समिति —भिक्षा वृत्ति में सावधानी रखना । (४) आदान निक्षेपण समिति —किसी भी वस्तु को उठाने और रखने में सावधानी रखना । (५) परिष्ठापन समिति —लघु शंका दीर्घ शंका आदि के लिए जीव जन्तु रहित योग्य स्थान देखना तथा उसमें सावधानी रखना ।

(८)

साधु आहार के प्राप्त होने पर मद न करे। न मिलने पर शोक न करे। अधिक प्राप्त होने के लिए व्याकुल न हो। सदा अपने आपको परिग्रह से दूर रक्खे।

(९)

सम्यक्त्व पर दृढ रहने वाले मुनि बचे-खुचे और रूखे आहार का सेवन करते हैं। ऐसे ही मुनि भव सागर के पार उतरते हैं। वे ही उत्तीर्ण जीवन्मुक्त तथा विरत कहे जाते हैं।

(१०)

जो मुनि संसार के भय को जानता है, वही मृत्यु से छुटकारा प्राप्त करता है। वह संसार में एक मात्र मोक्ष रूप परम तत्त्व को देखता है, एकान्त में रहता है, स्वभाव से शान्त होता है, समितियों का पालन करता है, ज्ञानादि गुणों से युक्त होता है, सदा इन्द्रियों को वश में रखता है। साधु को मृत्यु के लिए तैयार रहकर विचरण करना चाहिए।

(११)

से वता कोह च माण च माय च लोभ च।
एय पासगस्स दंसण ।
उवरय-सत्थस्स पलियंत-करस्स आयाण सगडब्भि।

(१२)

सीओसिण च्चाई से निग्गंथे
अरइ-रइसहे फरुसिग नो वेएइ।
जागर-वेरोवरए वीरे एवं दुक्खा पमोक्खसि।

(१३)

अणाणाए पुट्ठा वि एगे नियट्टंति मंदा मोहेण पाउडा।
अपरिग्गहा भविस्सामो समुट्ठाय लद्धे कामे अभिगाहइ।
अणाणाए मुणिणो पडि-लेहंति, एत्थ मोहे पुणो पुणो
सन्ना नो हव्वाए नो पारए।

(११)

ज्ञानादि गुणों से युक्त मुनि क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन [त्याग] कर देता है। संसार के स्वरूप को देखनेवाले हिंसा के पूर्ण त्यागी, संसार का अन्त करने वाले भगवान का यह सिद्धान्त है। जो व्यक्ति कर्मों के आगमन को रोक देता है वह पूर्व कर्मों को भी शीघ्र ही नष्ट कर डालता है।

(१२)

मुनि सुख और दुःख की परवाह नहीं करता। प्रतिकूल और अनुकूल सभी बातों को समान रूप से सहता है। वह संयम की कठोरता पर ध्यान नहीं देता, सदा शान्त रहता है। वैर विरोध से दूर रहता है। वही वीर है, वही उत्तम सुख प्राप्त करता है।

(१३)

अज्ञानी जीव परीषह या उपसर्ग आने पर भगवान की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं और संयम से भ्रष्ट हो जाते हैं। कुछ लोग दीक्षा लेकर भी मुनि के वेश को लजाते हैं। वे नाना प्रकार के काम भोगों का सेवन करते हैं। फिर भी अपने को त्यागी कहते रहते हैं। स्वच्छंदता पूर्वक चारों ओर काम भोगों को ढूँढते रहते हैं। अत्यन्त मोह में डूबे रहते हैं, अतः वे न इधर के रहते हैं न उधर के।

(१४)

दुव्वसु मुणी अणाणाए,
तुच्छए गिलाइ वत्तए।
एस वीरे पससिए,
अच्चेइ लोय-सजोग
एस नाए पवुच्चइ।

(१५)

अवहा ण पामए परि-हरेज्जा
एस भग्गे आयरिएहिं पवेइए
जहित्थ कुसले नोव लिंपिज्जासि।



(१३)

भगवान् की आज्ञा के विपरीत चलने वाला मुनि दुर्वसु अर्थात् खोटे सिक्के के समान होता है। वह ज्ञान दर्शन आदि सम्पत्ति से शून्य होता है। वह जलता हुआ लगता है। इसके विपरीत भगवान की आज्ञा में चलने वाला वीर कहा जाता है। उसकी प्रशंसा होती है। वह संसार चक्र को पार कर जाता है। यही सन्मार्ग कहा गया है।

(१४)

साधु, परिग्रह को अपने से अलग समझकर छोड़ देवे। यह मार्ग पूर्वाचार्यों द्वारा बताया गया है। इस मार्ग में चलने वाला कुशल व्यक्ति पापों में लिप्त नहीं होता।





: ४ :

हे मुनि-वर !

का अरइ के आणदे ?
इत्थं पि अग्गहे चरे ।
सव्व हास परिच्चज्ज,
आलीण-गुत्तो परिव्वए ।



(१)

सद्दे फासे अहियासमाणे, निव्विद नंदि इह जीवियस्स ।
मुणी ! मोणं समायाय धुणे कम्म-सरीरगं ।

(२)

उववाय चवणं नच्चा, अणण्णं चर माहणे !
से न छणे छणावइ, छणंत नाणु-जाणइ ।

(३)

णिव्विंद णंदिं अरए पयासु,
अणोम-दंसी णिसण्णो पावेहिं कम्मेहिं ।

(४)

कोहाइ-माणं हणियाय वीरे !
लोभस्स पासे निरयं महंतं ।
तम्हा य वीरे विरए वहाओ,
छिंदिज्ज सोयं लहु-भूय-गामी ।

(१)

हे मुनिवर !

अनुकूल तथा प्रतिकूल शब्द, स्पर्शादि को समान भाव से सहन करते हुए सांसारिक भोगों से प्राप्त होने वाली मनस्तुष्टि से सदा दूर रहो। संयम का अवलम्बन करके कर्म शरीर (कार्मण शरीर) को आत्मा से अलग करो।

(२)

मुनिवर !

जन्म और मरण को जानकर ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप मोक्ष मार्ग पर विचार करो। न किसी जीव को स्वयं मारो, न मारने के लिए कहो और न मारने वाले का अनुमोदन ही करो।

(३)

मुने !

इन्द्रिय विषयों के आनन्द से घृणा करो। स्त्री आदि में रति छोड़ दो। हृदय में उच्च भावनाओं को स्थान दो। सभी पाप कर्मों से अलग रहो।

(४)

हे वीर !

क्रोध, मान आदि कषायों का नाश करो। लोभ के भयंकर परिणामों पर विचार करो। यदि कर्मों के नाश द्वारा भार रहित बनकर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हो तो हिंसा से अलग होकर कर्म-धारा के स्रोत को रोको।

(५)

गथ परिएणाय इह'ऽज धीरे।
सोय परिएणाय चरिज्ज दंते।
उम्मज लद्धु इह माणवेहि,
नो पाणिणं पाणे समारभिज्जा।

(६)

अणन्न-परम नाणी,
नो पमाए कयाइवि।
आय-गुत्ते सया धीरे,
जाया-माया-इ जावए।

(७)

का अरइ ? के आणंदे ? इत्थ पि अग्गहे चरे,
सव्व हास परि-चज्ज, अल्लीण-गुत्तो परिव्वए।

(५)

आ धीर पुरुष !

कर्म बंध की गाठ को पहिचान। आज ही से पाप करना छोड दे। इन्द्रियों को कर्मबन्ध का स्रोत जान कर उनका दमन कर। संयम रूप नौका को प्राप्त करके संसार सागर में अपना उद्धार कर और प्राणीओं का वध करना छोड़ दे।

(६)

ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह संयम को सर्वोत्कृष्ट मानकर कभी उसमें प्रमाद न करे किन्तु धीर बनकर सदा आत्मा को सुरक्षित रखे और आहार आदि की मात्रा का ध्यान रखकर संयम मार्ग की निरंतर यात्रा करे।

(७)

साधु !

क्या अरति [1] और क्या आनन्द ! इन सब बातों से निर्लिप्त रहकर विचरो। हास्य आदि ९ नोकषाय तथा * कषायों को छोड कर इन्द्रियों को वश में रक्खो और तीनों योगों पर नियंत्रण रख कर संयम का पालन करो।

---

[1] हास्य, रति, अरति, भय शोक, जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुन्सकवेद ये नौ नोकषाय हैं।

* क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय हैं।

(८)

सहिए दुक्ख-मत्ताए पुट्ठो नो झंझाए,
पासिय दविए लोगा-लोग पवंचाओ मुच्चइ।

(९)

समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए
जमिणं अन्न-मन्न वितिगिच्छाए
पडिलेहाए न करेइ पावं कम्मं,
किं तत्थ मुणी कारणं सिया।

(१०)

से तं जाणह-जमहं बेमि।
तेइच्छं पंडिए पवय-माणे।
से हंता छित्ता भित्ता लुंपइत्ता
विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता
अकडं करिस्सामि त्ति मन्नमाणे
जस्स वि य णं करेइ,
अलं बालस्स संगेणं
जे वा से कारेइ बाले
न एवं अणगारस्स जायइ।

(८)

ज्ञान दर्शन आदि गुणों से युक्त मुनि किसी प्रकार का दुःख आन पर न घबरावे। इस बात को ठीक समझ कर मुमुक्षु प्राणी लोक अलोक के प्रपंच से छूट जाता है।

(९)

सभी प्राणियों में समभाव रखता हुआ मुनि आत्मा को संयम द्वारा प्रसन्न करे। जो व्यक्ति भय, लज्जा या दिखाने के लिए पाप कर्म को छोड़ता है क्या वह मुनि हो सकता है? मुनि तो वही हो सकता है जिसके मन में हिंसात्मक विचार भी नहीं आते।

(१०)

हे साधुओ!

इसलिए जो मैं कहता हूँ उसे जानो। जो साधु अपने को पंडित मानकर काम चिकित्सा का उपदेश देता हुआ जीव हिंसा में [illegible] रहता है वह जीवों को मारता, उनका छेदन भेदन [illegible] उन्हें विविध प्रकार से हैरान करता और प्राणान्तक [illegible] जाता है। वह यह अभिमान करता है कि मैं [illegible] कार्य करके दिखाऊँगा। जिसकी वह चिकित्सा [illegible] हिंसा में प्रवृत्त कर देता है। ऐसे अज्ञान का [illegible] चाहिए। यह निम क्रिया को करने के लिए [illegible] करनी चाहिए क्या कि अनगार को इस प्रकार का [illegible] देश देना अपने सिद्धांत के विपरीत है।

(११)

एम पस्स मुणी ! महब्भय नाइ-वाइज्ञा कंचण।
एस वीरे पससिए जे न नि विज्जइ आयाणाए ।
न मे देइ न कुप्पिज्जा थोव लद्धुं न खिसए ।
पडि-सेहिओ परिणमिज्जा,
एय मोण समणुवासिज्जासि ।

(१२)

से त सवुज्झमाणे आयाणीय
समुट्ठाय तम्हा पाव-कम्म नेव कुज्जा न करावेज्जा ।



(११)

मुने !

इस प्रकार हिंसा आदि को महाभय जानकर किसी को नहीं मारना चाहिए। यही वीर और प्रशंसा के योग्य है जो ज्ञान दर्शन आदि मोक्ष मार्ग से निर्विण्ण नहीं होता। भिक्षार्थ जाने पर यदि कोई नहीं देता तो उस पर क्रोध न करे। थोड़ा मिलने पर निन्दा न करे। मनाही कर देने पर शांत चित्त से लौट आवे। हे मुनिवर ! तुम इसी प्रकार के मुनि व्रत का पालन करो।

(१२)

इस बात को जान कर अनगार संयम मार्ग को स्वीकार करके न स्वयं पापकर्म करे और न दूसरों से करावे।



t



: ५ :

वि वे क

नत्थि कालस्स णागमो,
सव्वे पाणा पियाउआ सुहसाया,
दुक्ख-पडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो,
जीविउ-कामा, सव्वेसिं जीवियं पियं ॥

(१)

भूएहिं जाण पडिलेह सातं, एयाणुपस्सी तंजहा—
अधत्त, रहिरत्त, भूरत्त,
कारणत्त, कुटत्त, रुज्जत्त,
वडभत्त, सामत्त सवलत्त,
सह पमाएण अणेग-रूवाओ जोणीओ संधेइ
विरूव-रूवे फासे पडि-सं-वेएइ ।

(२)

इणमेव नावकंखंति, जे जणा धुव-चारिणो ।
जाई-मरणं परिन्नाय, चरे संकमणे दढ ॥

(३)

आयय-चक्खू लोगविपस्सी, लोगस्स अहो-भाग जाणइ,
उड्ढ भाग जाणइ, तिरिय भाग जाणइ
गढिए लोए अणु-परियट्टमाणे, संधि विइत्ता इह मच्चिएहिं
एस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडि-मोयए ।
जहा अंतो तहा बाहिं जहा बाहिं तहा अंतो
अंतो अंतो पूइ-देहान्तराणि-पासइ
पुढो वि सवंति पडिए पडि-लेहाए

(१)

सभी प्राणियों को सुख प्रिय है—यह जानकर सभी के साथ विवेकपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। जीव अपने प्रमाद के कारण ही अन्धे, बहरे, गूँगे, काने, ठूँठे, कुबड़, टेढे मेढे, काले, चितकबर, आदि होते हैं तथा नाना प्रकार की योनियों को प्राप्त करते हैं। एव अनेक प्रकार के भयकर कष्ट उठाते हैं।

(२)

जो लोग चारित्र पर दृढ रहते हैं, वे इन कामभोगों की आकाक्षा नहीं करते। इसलिए जन्म और मरण का स्वरूप जानकर सयम में दृढ होकर विचरण करना चाहिए।

(३)

जो सदा सावधान रहता है, ससार के स्वभाव को जानता है, ऊर्ध्व, अध तथा तिर्यक्लोक के स्वरूप को पहिचानता है, ससार के चक्र में घूमते हुए कामासक्त लोगों को देखता है, मनुष्य लोक में ज्ञान दर्शन आदि भाव सधियों को जानकर विषयभोगों का त्याग करता है वही वीर है तथा जो कर्म बन्धन में फँसे हुए प्राणियों को छुडाता है, राग द्वेष आदि आभ्यतर तथा स्त्री पुत्र आदि बाह्य बन्धनों को तोड देता है वही प्रशसा के योग्य है। शरीर जिस प्रकार अन्दर से अशुचि है उसी प्रकार उसके बाह्य रूप को भी जो देख लेता है और शरीर के अन्दर दुर्गंधों से भरे हुए तथा भिन्न २ द्वारों से झरने वाले मूत्र, पुरीष आदि को भी देख लेता है, वही पडित है।

(४)

निया तत्थ एगयरं वि-प्परा-मुगइ उभु अनयरम्मि कप्पइ।
सुहट्ठी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढ विप्परियासमुवेइ,
सएण विप्प-माएण पुढो वयं प कुव्वइ,
जमिमे पाणा पव्वहिया ।
पडिलहाए नो नि-करणयाए
एस परिन्ना पवुच्चइ कम्मोवसंती ।

(५)

न दुक्खं पत्तेय इह माणवाण,
तस्स दुक्खस्स कुसला परिन्नमुदाहरंति ।
इइ कम्मं परिन्नाय सव्वसो ।
जे अणन्न-दंसी से अणण्णारामे
जे अणण्णारामे से अणन्नदंसी ।

(६)

आरम्भ-ज दुक्खमिणं ति णच्चा
माणं पमाई पुणरेइ गब्भं ।
उवेहमाणो सद्द-रूवेसु उज्जू ।
मारा-भि-संकी मरणा पमुच्चइ ॥

(४)

सुखार्थी जीव सुख के लिए हाय हाय करता हुआ पहले किसी एक जीवनिकाय की हिंसा करता है, फिर छहों कायों की हिंसा करने लगता है। वह अपने ही किए हुये कर्मों के कारण दुःख पाता है किन्तु मोह में पड़कर दूसरों को दुःख का कारण समझता है। अपने ही प्रमाद के कारण विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करता है। जिस संसार में ये प्राणी पीड़ित हो रहे हैं, उसे जानकर विरागी किसी को कष्ट पहुँचाने वाले कार्य न करे। यही परिज्ञा है, इसीसे कर्म उपशान्त होते हैं।

(५)

संसार में लोगों के लिए जो दुःख बताए गये हैं, समझदार उन्हें अच्छी तरह जानता है। इन दुःखों के कारणभूत कर्मों को जानकर जो व्यक्ति दृढ़ श्रद्धा वाला होता है, वही मोक्ष-मार्ग के अतिरिक्त और कहीं रुचि नहीं रखता। जो मोक्ष के अतिरिक्त कहीं रुचि नहीं रखता, वही दृढ़ श्रद्धा वाला माना गया है।

(६)

संसार में दुःख हिंसा से उत्पन्न होता है, मायावी तथा प्रमादी को बार बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। वह जन्म मरण के चक्कर में नहीं छूटता। यह जानकर, कषाय रहित, सरल स्वभाव वाला विरागी पुरुष मृत्यु से डर कर शब्द, रूप आदि इन्द्रिय विषयों में उपेक्षा रखता है और धीरे धीरे वह मृत्यु से छूट जाता है।

(७)

आसवित्ता एय-मट्ठ इच्चेगे समुट्ठिया,
तम्हा त बिइय नो सेवए णिस्सार पासिय नाणी।

(८)

कामा दु-रति-क्कमा,
जीविय दुप्पडि-बूहग,
काम-कामी खलु अय पुरिसे
से सोयइ, जूरइ, तिप्पइ, परितप्पइ।

(९)

से अबुज्झमाणे हओवहए,
जाइ-मरण अणु-परि-यट्टमाणे।

(१०)

जीविए पुढो पिए इहमेगेसि—
माणवाण खेत्त-वत्थु-ममायमाणाण
आरत्त विरत्त मणि-कुडल सह हिरण्णेण,
इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता।

(७)

हिंसा आदि कार्य करने के बाद भी कई भव्य प्राणी संयम मार्ग में चल आते हैं। भोगों को निःसार समझकर वे ज्ञानी फिर उनका सेवन नहीं करते।

(८)

भोग-विलासों को छोड़ना अत्यन्त कठिन है, जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता। पुरुष सदा कामनाओं की पूर्ति में लगा रहता है। वह शोक करता है, दुःखी होता है, मर्यादा छोड़ देता है तथा कष्ट प्राप्त करता है।

(९)

इस प्रकार की कर्म रचना से अनभिज्ञ जीव संसार में फँसा रहता है, विविध प्रकार के रोगों से उसका शरीर नष्ट हो जाता है। अपकीर्ति प्राप्त करके वह जन्म मरण के चक्र में पड़ा रहता है।

(१०)

मित्र वस्तु आदि सम्पत्ति में ममत्व रखने वाले मनुष्य को जीवन अत्यन्त प्रिय लगता है। फिर भी कर्मों के फलस्वरूप उसे मरण तथा दूसरे दुःख भोगने पड़ते हैं। यदि शुभ कर्मों के कारण उसे विविध प्रकार के वस्त्र, मणि, आभूषण, सुवर्ण तथा स्त्री आदि वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं तो वह सदा उसी में आसक्त रहता है।

(११)

न इत्थ नरा वा दमा वा नियमो वा दिस्सइ।
स पुएण बाले जीविउ-काम लालप्पमाणे मूढे
विप्परियास-मुवेइ।

(१२)

नत्थि कालस्स णागमो।
सव्वे पाणा पियाउया सुह-साया
पिय-जीविणो जीविउ-कामा
सव्वेसि जीवियं पियं।

(१३)

त परि-गिज्झ दुपय चउप्पय अभि-जुञ्जियाण स सिंचियाण
तिविहेण जावि से तत्थ मत्ता भवइ,
अप्पा वा बहुया वा से तत्थ गढिए—चिट्ठइ भोयणाए।
तओ से एगया विविह
परिसिट्ठं सभूय महोवगरण भवइ।
तपि से एगया दायाया वा विभयति,
अदत्ताहारो वा से अवहरति,
रायाणो वा स विलुपति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से,
आगार-दाहेण वा से डज्झइ।
इय स परस्स अट्ठाए कूराइ कम्माइ, बाले पकुव्वमाणे
तेण दुक्खेण समूढे,
विप्परियास-मुवेइ, मुणिणा हु एग पवेइग

(११)

आसक्त मनुष्य को इस लोक में तपस्या, इन्द्रिय दमन या नियम पालन का कोई फल दिखाई नहीं देता। इस प्रकार अज्ञानी जीव, जीवन की आकांक्षा में लगा रहता है। भोगों की लालसा में फंसा रहता है। तथा मोहान्ध होकर विपरीत ज्ञान प्राप्त करता है।

(१२)

मृत्यु टल नहीं सकती। सभी प्राणी दीर्घायु चाहते हैं, सुख पसंद करते हैं, दुःख से घबराते हैं। उन्हें मरण अप्रिय है, जीवन प्रिय है। वे सभी जीवित रहना चाहते हैं।

(१३)

सुखी जीवन बिताने की आशा को मन में रखकर मनुष्य व्यापार करने के लिए द्विपद चतुष्पद आदि का सचय करता है। इसके लिए वह तीन करण तथा तीन योग से जुटा रहता है। उससे उसको थोड़ा-सा धन प्राप्त हो जाता है, वह उसी के भोग करने में आसक्त बना रहता है।

बचा हुआ धन धीरे २ इकट्ठा हो जाता है। समय पाकर वह बहुत बढ़ जाता है फिर या तो उसे सगे-सम्बन्धी बाँट लेते हैं या डाकू लूट लेते हैं या राजा छीन लेते हैं। वह धन किसी न किसी प्रकार नष्ट हो जाता है। इस प्रकार अज्ञानी जीव दूसरों के लिए क्रूर कर्म करता है, उसी दुःख तथा मोह से अन्धा होकर वह सदा विपरीत ज्ञान प्राप्त करता है। महामुनि भगवान् महावीर ने यह उपदेश दिया है।

(१४)

अवरेण पुव्विं न सरंति एगे ।
किमस्स तीयं किं वाऽऽगमिस्सं ॥
भासंति एगे इह माणवा उ ।
जमस्स तीयं तमागमिस्सं ॥

(१५)

नाईय-मट्ठं न य आगमिस्सं,
अट्ठं नि-यच्छंति तहागया उ ।
विहूय-कप्पे एया-णु-पस्सी
नि-ज्झोसइत्ता खवगे महेसी ॥

(१६)

जहा पुण्णस्स कत्थइ
तहा तुच्छस्स कत्थइ
जहा तुच्छस्स कत्थइ
तहा पुण्णस्स

ॐ

(१४)

अज्ञान जीव भूत और भविष्य काल को भूल जाता है। वह इस बात पर भी विचार नहीं करता कि इस जीव ने संसार में कैसे भटकना पड़ता है और भविष्य में क्या दशा होगी ? कुछ यह कहते हैं कि जीव का अतीत काल जैसा रहा है वैसा ही भविष्य भी रहेगा। अर्थात् जीव सदा सुख दुःख भोगता रहेगा।

(१५)

किन्तु तत्वज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं कहते। वे तो कहते हैं कि कर्मों के परिणाम स्वरूप ही जीव सुख—दुःख भोगता है। इस लिए शुद्ध आचार वाले मुनि को पूर्वोक्त बात जानकर कर्मों का क्षय करना चाहिए।

(१६)

यह उपदेश जिस प्रकार धनवान के लिए है उसी प्रकार दरिद्र के लिए भी है। जिस प्रकार दरिद्र के लिए है उसी प्रकार धनवान् के लिए भी है।



: ६ :

मु क्ता हा र

तुममेव तुम मित्त,
कि बहिया मित्तमिच्छसि ?



(१)

अणोहतरा एए नो य ओहं तरित्तए
अतीर-गमा एए नो य तीरं गमित्तए
अपारंगमा एए नो य पारं गमित्तए ।
आयाणिज्जं च आयाय तम्मि ठाणे न चिट्ठइ,
वितहं पप्प खेयन्ने तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ।

(२)

अवि य हणे अणाइयमाणे
इत्थ पि जाण सेयं ति नत्थि
केऽयं पुरिसे कं च नए ?

(३)

एस वीरे पससिए
जे बद्धे पडिमोयए उड्ढं अहं तिरियं दिसासु ।
से सव्वओ सव्व-परिन्नाचारी,
न लिप्पइ छण-पएण वीरे ।
से मेहावी अणुग्घायण-खेयन्ने
जे य बंध-प्पमुक्खमन्नेसी
कुसले पुण नो बद्धे नो मुक्के ।

(१)

हिंसा का उपदेश देने वाले सभी प्राणी संसार [illegible] में ही रहेंगे। उस तट नहीं सकते। वे तीर में डूब जाते [illegible] नहीं पहुँच सकते। वे मध्य में ही रहेंगे, पार नहीं जा सकते। [illegible] आदि सांसारिक वस्तुएँ प्राप्त कर लेने पर भी [illegible] या मोक्षमार्ग को नहीं प्राप्त कर सकते। [illegible] इस मिथ्यात्व उपदेश को प्राप्त करके [illegible] रहते हैं।

(२)

योग्य पात्र देखकर ही उपदेश देना चाहिए। [illegible] होता है कि श्रोता अपना अपमान समझ [illegible] है। ऐसी जगह उपदेश देना भी कल्याणकर नहीं है। [illegible] जानना चाहिए कि सुनने वाला पुरुष [illegible] है और किसको अपना आराध्य मानता है?

(३)

वह वीर पुरुष प्रशंसा के योग्य [illegible] हुए प्राणियों को मुक्त करता है। वह [illegible] में चारों ओर मन [illegible] जान कर [illegible] में प्रवृत्त नहीं होता। वही बुद्धिमान [illegible] हिंसा के कारण कष्ट को जानता है और संसार [illegible] में होने वाले [illegible] करता रहता है।

ऐसा कुशल व्यक्ति संसार में [illegible] बद्ध है और न मुक्त ही।

(४)

अरइ आउट्टे से मेहावी—
खणसि मुक्के।

(५)

जे ममाइय-मइं जहाइ
से चयइ ममाइय,
से हु दिट्ठ-पहे मुणी
जस्स नत्थि ममाइय।

(६)

उद्देसो पासगस्स नत्थि।

(७)

बाले पुण निहे काम-समणुण्णे
असमिय दुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव
आवट्टं अणु-परियट्टइ।

(८)

अत्थि सत्थं परेण परं
नत्थि असत्थं परेण परं।

(४)

बुद्धिमान् पुरुष को सयम मे अरति न करनी चाहिए। इस प्रकार वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

(५)

जो ममताबुद्धि को छोड़ देता है वही परिग्रह को छोड़ता है। जिसने परिग्रह को छोड़ दिया है उसी ने वास्तव में मोक्ष-मार्ग को देखा है। वही मुनि है।

(६)

तत्त्व दर्शी के लिए कोई उपदेश नहीं है।

(७)

अज्ञानी जीव सासारिक वस्तुओं से स्नेह करता है, काम भोगों में रुचि रखता है फलत उसका दुःख कभी शान्त नहीं होता। वह सदा दुःखी रहता है। दुःखों के ही घेरे में घूमता रहता है।

(८)

प्राणियों की हिंसा के लिए एक से एक भयकर शस्त्र विद्यमान हैं। किन्तु अशस्त्र अर्थात् अहिंसारूप सयम सभी के लिए एक-सा है।

(९)

पुरिसा !

तुममेव तुम मित्त
किं वहिया मित्तमिच्छसि ।

(१०)

दुहओ जीवियस्स -
परि-वदण-माणण-पूयणाए,
जसि एगे पमायंति ।

(११)

जे एग जाणइ, से सव्व जाणइ,
जे सव्व जाणइ, से एग जाणइ ।

(१२)

सव्वओ पमत्तस्स भय
सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भय ।

(१३)

जे एग नामे से बहु नामे, जे बहु नामे से एग नामे ।
दुक्ख लोगस्स जाणित्ता, वता लोगस्स स-जोग
जति धीरा महा-जाण परेण पर जति,
नावकखति जीवियं ।

(९)

पुरुष!

तू ही स्वयं अपना मित्र है। तू बाह्य जगत में मित्र क्या ढूँढ़ता है?

(१०)

राग-द्वेष के झगड़े में पड़े हुए अभागे जीव अपनी वन्दना, मान्यता तथा पूजा के लिए विविध प्रकार के हिंसात्मक कार्य करते हैं। बहुत से लोग इसी में पड़ जाते हैं और आत्महित से वंचित रह जाते हैं।

(११)

जो एक आत्म रूप तत्त्व को जानता है वह सब कुछ जानता है। जो सब कुछ जानता है वह एक आत्मा को अवश्य जानता है। आत्मज्ञान और सर्वज्ञान में कोई भेद नहीं है।

(१२)

जो व्यक्ति असावधान है उसे सब ओर से भय है। जो सावधान होकर जागता रहता है, प्रमाद नहीं करता, उसे कहीं कोई भय नहीं है।

(१३)

जो व्यक्ति एक इन्द्रिय या कषाय पर विजय प्राप्त कर लेता है वह सभी पर विजय प्राप्त कर लेता है। जो सभी पर विजय प्राप्त करता है वह एक पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। धीर पुरुष संसार के दुःख को जान कर विषय भोगों की आसक्ति को छोड़ देता है। वह संयमरूप महायान के द्वारा यात्रा करता है। उत्तरोत्तर उच्च स्थान को प्राप्त करता है। वह जीवन की भी आकांक्षा नहीं करता।

(१४)

जं जाणिज्जा उच्चालइय,
तं जाणिज्जा दूरालइय।
जं जाणिज्जा दूरालइय,
तं जाणिज्जा उच्चालइय।

(१५)

अप्पमत्तो कामेहिं
उवरतो पाव-कम्मेहिं
वीरे आय-गुत्ते जे खेयन्ने।

(१६)

आयाणं निसिद्धा सगडब्भि।

(१७)

किमत्थि ओवाही पासगस्स?
न विज्जइ?
नत्थि त्ति बेमि।

(१४)

जो पुरुष कर्मों का नाश करता है वही मोक्ष प्राप्त करता है, जो मोक्ष प्राप्त करता है वही कर्मों का नाश करता है।

(१५)

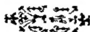
जो काम भोगों में नहीं फँसता है, पाप कर्मों से अलग रहता है और आत्मा को पतन से बचाता रहता है। वही धीर है, वही आत्मरक्षक है और वही निपुण है।

(१६)

कर्मों का आगमन रोकने वाला मनुष्य पूर्वकृत कर्मों का भी नाश कर डालता है।

(१७)

क्या सर्वदर्शी भगवान् के भी कोई उपाधि है या नहीं? नहीं है—यही मैं कहता हूँ।



उपाध्याय कविरत्न प मुनिश्री अमरचन्दजी म की सम्मति

आपकी आचारांग सूत्र को लेकर लिखी गई तीनों ही पुस्तकें देखीं। इतनी सुन्दर और श्रेष्ठ पुस्तकें लिखने के लिए हृदय के कण-कण से धन्यवाद। आपकी शैली प्रवचन शैली है जो आज के ज्ञानपिपासु एवं शिक्षित वर्ग की जिज्ञासा को सफलता के साथ तृप्त कर सकेगी। साहित्यिक क्षेत्र में आपका यह प्रथम पदनिक्षेप है जो अतीव सफल प्रमाणित हुआ है। मैं अपने स्नेही साथी का इस क्षेत्र में आने के लिए सस्नेह एवं सादर स्वागत करता हूँ।"

प० बसन्तीलालजी नलवाया, न्यायतीर्थ की सम्मति

आचार शास्त्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध अध्यात्म का रत्नाकर है। इस रत्नाकर के आलोडन कर पण्डित मुनिश्री मधुकरजी ने कतिपय रत्नों का यह संकलन पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। कृत्रिम काच के विविध वर्णों की चमक पर बालक की तरह लुब्ध होने वाला भौतिक संसार सयाना होकर इन सच्चे रत्नों के महत्त्व को समझ सके इस आशय से किया गया मुनिश्री का यह प्रयत्न अनुमोदनीय है। पाठक इन रत्नों को परख कर अध्यात्म की ओर प्रगति करें, यही कामना है।

श्री शान्तिलाल वनमाली शेठ की सम्मति

आचारांग आत्मसाधना का आकरसूत्र है। इसमें भी आचारांग सूत्र के अन्तर्वर्ती अनुभववाणी का गहन कर सुन्दर संकलन किया गया है। पं मुनिश्री मधुकरजी महाराज की यह कलात्मक कृति जन साधारण को जैन धर्म के उज्ज्वल आत्मतत्त्व और उसकी उच्च भावनाओं की ओर आकृष्ट करने में समर्थ हो सकेगी। पू. महाराज श्री का यह अभिनव प्रयत्न अभिनन्दनीय और प्रशंसनीय है।